कमलेश भट्ट कमल

गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत की दस्तक

हिंदी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार (1933-1975) पर केंद्रित इस लेख में आगे बढ़ने से पहले यह समझ लेना ज़रूरी है कि 'हिंदी में ग़ज़ल ' और 'हिंदी ग़ज़ल ' एक ही चीज़ नहीं है। 'हिंदी ग़ज़ल' एक विधा का नाम है और 'हिंदी में ग़ज़ल' देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा के रचनाकारों द्वारा लिखी जा रही समस्त ग़ज़लों के लिए प्रयोग किया जाने वाला पद है। इस पद में हिंदी ग़ज़ल के एक विधा के रूप में अस्तित्व में आने से पहले की भी हिंदी में लिखी गई सभी ग़ज़लें शामिल हैं और हिंदी ग़ज़ल विधा के उदय के बाद लिखी जा रही वे ग़ज़लें भी शामिल हैं जो लिखी तो हिंदी में जा रही हैं, लेकिन अपने अंदाज़,अपनी भाषा ,अपने मिज़ाज व सरोकार तथा अपनी विशेष प्रतिबद्धता के चलते उर्दू शायरी के रूप में पहचानी जाती हैं। इसलिए जब तक इस अंतर को ठीक से समझा और सामने रखा नहीं जाएगा, सही बात नहीं हो सकती है, सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है।

पत्रिका द्वारा सुझाए गए विषय 'हिंदी ग़ज़ल में दुष्यंत की दस्तक' से ऐसा आभासित होता है कि हिंदी ग़ज़ल एक विधा के रूप में पहले से अस्तित्व में थी और तब दुष्यंत का आगमन हुआ । जबकि वास्तविक स्थिति इसके बिल्कुल उलट है। हिंदी में ग़ज़ल का 'हिंदी ग़ज़ल ' इस विधा के नाम से प्रवर्तन ही दुष्यंत कुमार के साथ हुआ और इस बात को अब पांच दशक हो रहे हैं। उससे पहले की हिंदी में लिखी जा रही ग़ज़लों की हिंदी ग़ज़ल के रूप में कोई मान्यता थी ही नहीं। बल्कि उन्हें उर्दू ग़ज़लों की छाया के रूप में देखा जा रहा था। तब ऐसी ग़ज़लों का संज्ञान न तो हिंदी में लिया जा रहा था न उर्दू में। हिंदी वाले उनका संज्ञान इसलिए नहीं ले रहे थे कि उससे बेहतर ग़ज़लें उर्दू में लिखी जा रही थीं या लिखी जा चुकी थीं। उर्दू में संज्ञान न लेने का प्रमुख कारण उन ग़ज़लों का देवनागरी लिपि में होना था। अन्यथा शमशेर (1911-1993) तो देवनागरी लिपि में भी उर्दू ग़ज़ल ही लिख रहे थे। क्योंकि उर्दू भाषी उसको ही उर्दू मानते हैं जो फ़ारसी लिपि में लिखी गई हो। हिंदी में लिखी जा रही ग़ज़लों का यह लंबा सिलसिला कबीर (1398-1518) से लेकर दुष्यंत के ठीक पहले तक जारी रहा। इस बीच एकाध अपवाद जैसी स्थितियाँ भी देखने को मिलती हैं। जैसे भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) ने 'रसा' उपनाम से फ़ारसी लिपि में ग़ज़लें लिखीं। लेकिन उनका भी उर्दू ग़ज़ल ने कोई संज्ञान नहीं लिया। बकौल उर्दू विद्वान और साहित्यकार डॉ.

 ISSN:2583-8849

सादिक ऐसा इसलिए हुआ कि भारतेन्दु की ग़ज़लें बहुत 'कमज़ोर' थीं। हम देख पाते हैं कि यदि हिंदी में दुष्यंत कुमार का आगमन एक ग़ज़लकार के रूप में न हुआ होता और हिंदी में ग़ज़ल ने 'हिंदी ग़ज़ल ' के रूप में एक नई विधा के माध्यम से अपना विकास और विस्तार न किया होता तो हिंदी की ग़ज़लें आज भी बेपहचान होकर पहले की ही तरह घुट-घुटकर जी रही होतीं। इतना ही नहीं, हिंदी की ग़ज़लों को सामर्थ्यहीन और उर्दू ग़ज़लों की तुलना में दोयम दर्जे की बताकर उनका तिरस्कार और उपहास भी किया जा रहा होता। क्योंकि हिंदी की ग़ज़लों में उर्दू शायरी की सारी विशेषताएं ठीक उसी रूप में मौजूद नहीं हैं, जैसे वे उर्दू में होती हैं। बल्कि हिंदी के रचनाकार हिंदी व्याकरण, हिंदी शब्दावली जिसमें उर्दू की वह शब्दावली भी शामिल है जो हिंदी में रच-बस गई है, को सम्मिलित करते हुए अपनी ग़ज़लें कहते हैं और इसमें उर्दू के जानकारों को नुक्ताचीनी का बहुत सारा अवसर मिलता है। कुछ उर्दू जानने वाले और उर्दू शायर अच्छी होते हुए भी हिंदी ग़ज़लों की इसी वजह से सराहना नहीं कर पाते हैं। दुष्यंत को भी उर्दू में प्रायः नहीं ही स्वीकार किया जा सका है तो उसके भी यही कारण रहे हैं। ऐसे में ग़ज़ल की हिंदी दुनिया में दुष्यंत की उपस्थिति का एक ख़ास मतलब था और वह मतलब ऐतिहासिक सिद्ध हुआ।

दरअसल दुष्यंत कुमार वह पहले शख़्स हैं जिनके माध्यम से हिंदी की गजल की स्थापना 'हिंदी ग़ज़ल' जैसी विधा के रूप में हुई । इस अर्थ में वे हिंदी ग़ज़ल विधा के आदि पुरुष ठहरते हैं। लेकिन ऐसा कहने का यह अर्थ बिल्कुल नहीं कि दुष्यंत से पहले के हिंदी ग़ज़लकारों का किसी प्रकार से अनादर किया जा रहा है। बल्कि हिंदी ग़ज़ल की परंपरा की खोज ही तब प्रारंभ हो सकी या कहिए उसकी आवश्यकता हुई जब हिंदी ग़ज़ल स्थापित हो गई। यह परंपरा इतिहास में अमीर खुसरो (1253-1325) तक जाती है। यदि हिंदी की ग़ज़ल हिंदी ग़ज़ल के रूप में अपनी पहचान न बना पाती तो इतिहास और परंपरा का कोई अर्थ ही न होता। कभी-कभार तो हिंदी के ग़ज़लकार ही इस बात को लेकर कुपित होते और चुनौती देते रहते हैं कि हिंदी में तो ग़ज़लें दुष्यंत से पहले से ही लिखी जा रही हैं। इससे किसी को इनकार हो भी नहीं सकता और न होना चाहिए। लेकिन यह सौभाग्य कदाचित दुष्यंत को ही मिलना था कि उनके आगमन के बाद ही हिंदी में लिखी जा रही ग़ज़लों को हिंदी ग़ज़ल के रूप में एक नई विधा मिली। यह श्रेय भी दुष्यंत कुमार ने अपने आप थोड़ी हथिया लिया था, इसे तो उनके बाद के ग़ज़लकारों की पीढ़ियों ने ही नहीं,जन सामान्य ने भी उनकी ग़ज़लों को गले लगाकर दिया। दुष्यंत कुमार को तो अपनी ग़ज़लों पर ठीक से ख़ुश होने का भी अवसर क्रूर नियति ने कहां दिया था। हिंदी ग़ज़ल की इस नई विधा ने अगले पांच दशकों में ऐसा बहुआयामी सृजन किया है कि वह समूची हिंदी कविता के लिए गर्व और गौरव की बात हो सकती है। हिंदी ग़ज़ल आज हिंदी कविता का वर्तमान ही नहीं, उसका भविष्य भी नज़र आती है।

हमें यह समझने की जरूरत है कि हिंदी ग़ज़ल का 50 वर्षों का जो सफ़र है, उसके मूल में दुष्यंत कुमार ही हैं। मैं यह कई बार कह चुका हूँ कि हिंदी ग़ज़ल में

आगे चलकर दुष्यंत कीकोई परंपरा विकसित नहीं हुई। आने वाले किसी ग़ज़लकार को आप दुष्यंत जैसा नहीं बता सकते। साहित्य में सृजन की मौलिकता की दृष्टि से यह बहुत सकारात्मक स्थित है। लेकिन हुआ यह कि दुष्यंत की ग़ज़लों से कुछ मुहावरे और सूत्र ग़ज़लकारों ने अवश्य उठाए और उन्हें अपनी तरह से विकसित किया। इतना ही नहीं, परवर्ती ग़ज़लकारों ने अभिव्यक्ति के नए मुहावरों और सूत्रों की भी तलाश करते हुए हिंदी ग़ज़ल को निरंतर बहुआयामी बनाने का प्रयास किया। आज हिंदी में ग़ज़लों का सृजन का एक ऐसा आंदोलन है, जिससे पिछले पचास वर्षों की हिंदी कविता को न केवल प्रभावित और विस्तृत किया है, वरन पाठकों से बहुत दूर जा चुकी हिंदी कविता को एक बार पुनः पाठकों से जोड़ने का उपक्रम भी किया है। क्योंकि छंदमुक्त कविता ने बौद्धिक स्तर पर चाहे जितनी भी उपलब्धियाँ हासिल कर ली हों, आम पाठकों के साथ उसका जुड़ाव कभी नहीं हो पाया। यह स्थिति जैसी पहले थी, वैसी आज भी है। यह बात दुष्यंत कुमार ने पचास

साल पहले समझ ली थी और तब समझी थी जब वे स्वयं छंदमुक्त कविता के एक प्रतिष्ठित कवि थे। तब उन्होंने ग़ज़ल में प्रवेश करते हुए कहा था , बल्कि मैं कहूंगा कि कहने का साहस किया था कि-

' यह एक विवादास्पद बात हो सकती है पर मैं बराबर महसूस करता रहा हूं कि कविता में आधुनिकता का छद्म, कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया। कविता और पाठक के बीच इतना फासला कभी नहीं था, जितना आज है। इससे भी ज्यादा दुखद बात यह है कि कविता शनैः-शनैः अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है। ऐसा लगता है गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं। इस कविता के बारे में यह कहा जाता है कि वह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका तैयार कर रही है। मेरी समझ में यह वक्तव्य भ्रामक है और यह दलील खोटी है। जो कविता लोगों तक पहुँचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती बह किसी भी क्रांति की संवहिका कैसे हो सकती है?'(अपराजेय आस्था का कवि: दुष्यंत कुमार, लेखक- कृष्ण कमलेश,पृष्ठ-41)

दुष्यंत कुमार का उक्त वक्तव्य बार-बार उद्धृत किया गया है और स्पष्ट है कि अपनी प्रतिबद्धता, बेबाकी और तर्कपूर्ण साहसिकता के लिए वह बेहद चर्चित हो चुका है। लेकिन हिंदी में ग़ज़ल पर इसी वक्तव्य का एक अंश जो प्रायः कम उद्धृत हुआ है, उसको भी देखना आवश्यक है-

'पिछली पीढ़ी के कवियों के बरअक्स आज की इन कविताओं में यह तय कर पाना मुश्किल है कि यह कैसी कविता है और यह कविता है भी या नहीं। इसीलिए मैंने कहा कि कविता की एकरसता या फिर आधुनिक, युवा, वाम और नई आदि विशेषणों से मडित आज की कविता के वाग्जाल और सपाटबयानी से उकता कर मैंने उर्दू के इस पुराने और आज़मूदा माध्यम की शरण ली है--गोकि में जानता था कि यहाँ भी इश्क और हुस्न से हटकर तकलीफ का बखान एक मुश्किल और नाजुक काम है और ग़ज़ल को रवियत से बंधे हुए लोग मेरी इस कोशिश पर नाक-भौं जरूर सिकोड़ेंगे।'

(वही, पृष्ठ-41)

दुष्यंत कुमार का यह वक्तव्य हिंदी ग़ज़ल के 'चार्टर' की तरह है, जिसका उल्लेख मैंने पहले किया है। यह मूल रूप से 'कल्पना' पत्रिका के जून 1975 में प्रकाशित हुआ था। इसके अंश बाद में 'साये में धूप' और 'सारिका' में भी प्रकाशित हुए थे। अगर दुष्यंत ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से उर्दू शायरी की रिवायत तोड़कर हिंदी ग़ज़ल की नई धारा बहाने का साहस न किया होता तो छंदमुक्त हिंदी कविता ने हिंदी कविता के पूरे परिदृश्य को आज पाठकों से कितनी दूर ले जाकर छोड़ दिया होता, उसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। नि:संदेह पाठक और कविता के बीच के इस अंतराल को भरने का काम हिंदी ग़ज़ल ने बहुत ही जिम्मेदारी के साथ उठाया और निभाया है। हिंदी ग़ज़ल की व्याप्ति बताती है कि वह संसद से सड़क तक सब जगह मौजूद है। वह राजनीति की आवाज़ है तो जनता की भी आवाज़ है। वह अखबारों की सुर्खियाँ है तो सदनों में जननेताओं की प्रभावी अभिव्यक्ति भी है। वह स्कूल की किताबों में किशोर और युवा पीढ़ियों से रूबरू है तो शोध का सबसे लोकप्रिय विषय भी है।

हिंदी ग़ज़ल को कई बार लोकप्रिय विधा के रूप में रेखांकित करते हुए उसे कमतर ऑकने की भी कोशिशें देखी गई हैं। लेकिन लोकप्रियता हिंदी ग़ज़ल के दूसरे गुणों में से एक गुण है। उसके और भी कई सारे गुण हैं जो उसे हिंदी ग़ज़ल बनाते हैं। उसके हिंदी कविता की मुख्य धारा बनने की वकालत करते हैं। ऐसे गुणों में सरोकार एवं प्रतिरोध का स्वर तथा समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति सबसे प्रमुख हैं। हिंदी ग़ज़ल ने उर्दू शायरी की पारंपरिकता से अपने को बिल्कुल अलग किया हुआ है और शायद यही उसकी पहचान का मुख्य कारण बना है। दुष्यंत कुमार के इकलौते ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप ' (प्रकाशन वर्ष 1975) की पहली ग़ज़ल का पहला ही शेर- 'कहाँ तो तय था चिराग़ाँ हरेक घर के लिए/ कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ' बताता है कि हिंदी ग़ज़ल अभिव्यक्ति की किन ऊंचाईयों को छूने वाली है।

ग़ज़ल में दुष्यंत की प्रखर अभिव्यक्तियों के बावजूद तथा उनकी जबरदस्त मास अपील' के बावजूद समकालीन हिंदी आलोचना ने जिस तरह उनकी ग़ज़लों को दरकिनार करके रखा, वह अपने आप में अत्यंत उपेक्षा एवं तिरस्कारपूर्ण ही नहीं बल्कि कपटपूर्ण भी लगता है।

कभी-कभी तो यह भी लगता है कि दुष्यंत की ग़ज़लों ने आलोचना की आवश्यकता को ही ख़त्म कर दिया था। क्योंकि वे पाठकों - श्रोताओं के साथ सीधे -सीधे संवाद कर रही थीं और उन्हें अपनी ताक़त से परिचित भी करा रही थीं। वह पाठक में जोश और हौसलों का ऐसा शिखर तैयार कर रही थीं कि उसके आगे कोई भी व्यवधान बौना ही नज़र आने वाला था।

दुष्यंत कुमार ने ग़ज़लों की दुनिया में आते हुए कई तरह के ख़तरे उठाए थे। भाषा और अभिव्यक्ति के ख़तरे तो थे ही, एक नई विधा में पैर जमाते हुए पूरी तरह उखड़ जाने के भी ख़तरे थे। साहित्य-धर्म का निर्वाह करते हुए मैत्री-धर्म को भूल जाने के अपने ख़तरे थे।

ख़तरे निजी स्तर पर भी कम नहीं थे। जैसा कि उनके पुत्र आलोक त्यागी बताते हैं कि इमरजेंसी लागू होने के कुछ समय बाद ही प्रकाशित 'साये में धूप ' की ग़ज़लें उससे पहले ही प्रकाशित होकर चर्चित हो चुकी थीं। जिसका असर यह हुआ कि अक्टूबर के आस-पास उज्जैन में उसका विमोचन निश्चित हुआ तो केंद्र सरकार के इशारे पर उसे स्थगित कर दिया गया। विमोचनकर्ता और कोई नहीं शिव मंगल सिंह सुमन जैसा धारदार और लोकप्रिय व प्रभावी रचनाकार था। अपनी यह बेचारगी स्वयं शिव मंगल सिंह सुमन ने आपातकाल की समाप्ति के बाद उसी उज्जैन में 'साये में धूप' का विमोचन करते हुए स्वीकार की थी। परंतु इसे सुनने के लिए दुष्यंत कुमार जिंदा ही कहां थे ? लेकिन सच बात तो यही है कि कोई भी रचनाकार बड़ा तभी बनता है जब वह ख़तरे उठाने की क्षमता रखता है। जो जितना बड़ा खतरा उठा सकता है,वह उतना बड़ा रचनाकार बन सकता है। लेकिन हर आदमी ऐसा कर भी नहीं सकता है। दुष्यंत ने किया तो वह दुष्यंत हो गए।

इस बात को ग़ज़ल के सब जानकर जानते हैं कि दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में कुछ शिल्पगत त्रुटियां रह गई हैं। इन त्रुटियों की ओर उनकी निगाह क्यों नहीं जा पाई और वे उन्हें क्यों सही नहीं कर पाए,यह एक अलग प्रश्न है। लेकिन उनकी ग़ज़लों में अभिव्यक्ति की जो सघनता, संवेदनशीलता और जो तीव्रता है,वह पाठकों और श्रोताओं के सिर चढ़कर बोलती है। शिल्पगत त्रुटियाँ के रहते हुए भी दुष्यंत की ग़ज़लों की अपार लोकप्रियता उनकी ताक़त को ही दर्शाती है। यहाँ दुष्यंत की ग़ज़लें शिल्प का अतिक्रमण करती-सी नज़र आती हैं।

मैं अपने इस लेख का समापन प्रसिद्ध आलोचक डॉ. विजय बहादुर सिंह की एक टिप्पणी से करना चाहूँगा जो उन्होंने दुष्यंत कुमार के साहित्य अकादमी के लिए लिखे गए विनिबंध में अंकित की है।डॉ. विजय बहादुर सिंह लिखते हैं -

'यह भी कहने की शायद ज़रूरत हो कि उनकी कविता एक नए काव्य-अभियान की शुरुआत करती है, एक नई काव्य-दिशा की भी, जिसमें सामूहिकता का वर्चस्व है और लोक जागरण का संदेश और लोक मंगलकारी सपनों तक ले जाने वाली कविता का आवाहन भी। वे इसी जागरण, आवाहन और नेतृत्वकारी चेतना के कवि हैं। किन्तु यह सब कोरा मौखिक और औपचारिक नहीं है। कविता का एक-एक शब्द यहाँ व्याकुलता से भरा हुआ है और है कर्म के लिए तत्पर और उद्यत भी।'(भारतीय साहित्य के निर्माता: दुष्यंत कुमार,विजय बहादुर सिंह, पृष्ठ-66)